THE ECONOMIC TIMES

Date:11-03-24

Bengaluru's Dry Run Is a National Crisis

ET Editorials

Most Indian cities face grave water risk, with the latest warning coming from the country's favourite tech town, Bengaluru. Large parts, especially those without piped Cauvery water that include high-end apartments, are experiencing shortages. Social media posts suggest that residents of upmarket condos are using toilets in local malls since there is no water at home. Authorities have asked residents to use water judiciously, pressed into service extra water tankers, and capped tanker prices for four months. This is not the look of a to-be-Viksit Bharat.

Bengaluru's water crisis is not a resource scarcity. It is a combination of bad water management, water-illiterate residents, contaminated supplies, leaky distribution networks and extensive urbanisation. The city has grown horizontally and vertically. So, not all places have Cauvery water. These areas depend on groundwater or tankers that bring water from borewells from adjoining towns. Many borewells are running dry as aquifers have not been recharged. The city has also lost its lakes that recharged aquifers. In 1961, Bengaluru had 262 lakes. Today, it has 81. Unplanned urbanisation has also altered the local ecology, hydrology and environment. Many of these problems beset other cities as well. A 2021 WWF report warned that 30 Indian cities will face grave water risk.

Bengaluru could have avoided this crisis if governments and citizens took care of basic water-saving and augmentation measures, as suggested by Karnataka Water Policy 2022. The plan suggests recycling, reusing treated wastewater, rainwater harvesting and industrial water-use planning. The city's population is expected to touch 20.3 million by 2031. Bengaluru, and other cities, must act now, or face a parched future.

THE HINDU

Date:11-03-24

Crisis of time

Rapid growth, such as Bengaluru's this century, and short-termism cannot coexist.

Editorial

The Karnataka water crisis has affected more than 7,000 villages, 1,100 wards, and 220 talukas thus far. The problem encompasses Mandya and Mysuru districts, where a major Cauvery river watershed and the Krishnaraja Sagar dam are located, and both important sources of water to Bengaluru. While the capital has hogged the headlines, the effects of the crisis are wider. Reports have suggested that the distal cause is the 'insufficient' rainfall last year, following the surplus in 2022, and the resulting under-'replenishment' of the Cauvery.

Erratic rainfall is not new to Karnataka. A Coffee Agro-forestry Network (CAFNET) project, a decade ago, assessed 60 years of data and found the rainy season over Kodagu had shrunk by two weeks in three decades while annual rainfall seemed to undulate in a 12-14-year cycle. Yet, the crisis now has come as a surprise thanks to Bengaluru's lack of preparation, a travesty for being one of India's wealthiest urban municipalities and home to many research institutions. Bengaluru consumes roughly 1,400 million litres a day each from the Cauvery and groundwater reserves. The groundwater recharge rate is much lower while the Cauvery's was compromised by last year's 'deficient' rain. These are deficits only relative to Bengaluru's demand. The situation is worse further away from the city's centre. This is ironic because these areas do not receive piped water from the Cauvery and depend on groundwater and water tankers, whereas the city was engineered for centuries until the 19th to move away from water from distant sources and towards its surfeit of lakes. Seasonal lakes have since dwindled, while perennial lakes have been strangled by concretisation and sewage.

Climate change is a crisis of time. It precipitates non-linear changes that lead to disproportionate, and sometimes irreversible, outcomes, forcing underprepared governments to mount rapid responses to forces that have been festering for decades. Even if the erratic rainfall is unrelated to climate change, the phenomenon only promises more unpredictability. In this regard, Bengaluru, and most Indian cities, will achieve little when they mount stopgap measures in the event of a crisis and drop the long-term view once the crisis has ended. Rapid growth, such as Bengaluru has had this century, and short-termism cannot coexist. There is a need for bipartisan solutions that transcend the change in government every five years; a circular water economy that maximises the utility of every litre, reducing the city's dependence on external sources; and, not to forget, a clean and healthy Cauvery.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:11-03-24

कृषि क्षेत्र में तोर - तरीके बदलने की आवश्यकता

सुनीता नारायण

दुनिया की कृषि व्यवस्था में बुनियादी स्तर पर कुछ न कुछ कमी है। जब आप यूरोप के आर्थिक रूप से संपन्न किसानों की तस्वीरें और भारत में अपनी नाराजगी सरकार तक पहुंचाने के लिए ट्रैक्टरों के साथ सड़क जाम करते किसानों को देखते हैं तो खामियों की बात साफ हो जाती है। वास्तविकता यह है कि ये सभी किसान दुनिया में कृषि उत्पादन पर बढ़ी लागत और जलवायु परिवर्तन से होने वाले गंभीर खतरों का सामना कर रहे हैं।

दुर्भाग्य से यूरोप में विवाद की जड़ जलवायु परिवर्तन से जुड़े कानून हैं। इन नए नियमों के अनुसार किसानों को कीटनाशकों का इस्तेमाल घटाकर आधा और उर्वरकों का उपयोग भी 20 प्रतिशत तक करने के लिए कहा गया है। नए नियमों के तहत उन्हें जैविक उत्पादन में इजाफा करना होगा और जैव-विविधता संरक्षण के लिए गैर-कृषि कार्यों हेतु अधिक भूमि छोड़नी होगी।

इसके अलावा नीदरलैंड्स ने नाइट्रोजन प्रदूषण कम करने के लिए मवेशियों की संख्या कम करने का प्रस्ताव दिया है और जर्मनी को जीवाश्म ईंधन डीजल पर सब्सिडी कम करनी है। ये सभी उपाय इसलिए जरूरी तौर पर करने होंगे क्योंकि दुनिया जलवायु परिवर्तन के खतरों से जूझ रही है।

यूरोपीय संघ (ईयू) ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन का बड़ा स्रोत है। उसके सालाना उत्सर्जन का 10 वां हिस्सा ग्रीन गैसें होती हैं। भारतीयों की तुलना में यूरोप के अधिक संपन्न किसान जब कृषि क्षेत्र में बढ़ रहीं चुनौतियों से परेशान हैं तो भारत के किसानों का क्या हाल होगा जो अस्तित्व से जूझ रहे हैं?

वास्तविकता यह है कि दुनिया में आधुनिक कृषि का प्रतीक मानी जाने वाली यूरोपीय कृषि प्रणाली सब्सिडी की बदौलत ही अब तक अपना अस्तित्व बचाती आई है। वर्ष 1962 से ही यूरोपीय संघ की साझी कृषि नीति (सीएपी) ने कृषि को वित्तीय समर्थन मुहैया कराया है। इसकी आलोचना भी खूब होती रही जिसके बाद यह सब्सिडी थोड़ी कम की गई।

वर्तमान में सीएपी यूरोपीय संघ के बजट का लगभग 40 प्रतिशत है और इसके तहत किसानों को सीधे सब्सिडी दी जाती है। यूरोपीय आयोग के आंकड़ों के अनुसार प्रत्येक किसान को सीधे आय समर्थन के रूप में 2021 में सालाना 6,700 यूरो (लगभग 50,000 रुपये प्रति महीने) दिए गए। इसके अलावा यूरोपीय संघ में कृषि को बढ़ावा देने के लिए अधिक निवेश किए जाते हैं।

पिछले कई वर्षों के दौरान कृषि कार्यों के तरीकों में बदलाव आए हैं और खेतों का आकार-बड़ा और अधिक संगठित हो गया है। लागत बढ़ने, ऊंचे मानकों और ढुलमुल सरकारी तंत्र के कारण छोटे किसान या छोटे स्तर पर इन कार्यों में लगे लोग छटपटा रहे हैं। बड़े किसान भी ऋणों के बोझ से परेशान हैं क्योंकि इन दिनों खेती करने की लागत काफी बढ़ गई है।

जैविक खेती का चलन उत्पादन खर्च बढ़ाने के लिए तैयार किया गया है। इस समय यूरोपीय संघ में 10 प्रतिशत भूमि पर जैविक खेती हो रही है। किसान बढ़ी लागत का जवाब दूसरे रूप में दे रहे हैं और फसलों एवं दूध आदि का उत्पादन बढ़ाने के लिए वे सभी तरह के उपाय आजमा रहे हैं। अधिक उत्पादन के चक्कर में रसायन और जैव-सामग्री (बायो-इनपुट) का अंधाधुंध इस्तेमाल हो रहा है। मगर इससे बदलते मौसम एवं जलवायु परिवर्तन के खतरों के बीच कृषि कार्यों की लागत और ज्यादा बढ़ गई है।

लागत में इस बढ़ोतरी को दो वास्तविकताओं का सामना करना पड़ता है। इसमें पहली चुनौती है खाद्य पदार्थों की कीमतें नियंत्रण में रखना और दूसरी चुनौती है जलवायु परिवर्तन के संकट के कारण फसलों को तेजी से होने वाला नुकसान। अंधाधुंध और अधिक से अधिक उत्पादन पाने का चलन बढ़ता ही जा रहा है। यह माना जाता है कि इस चलन को जारी रखते हुए पर्यावरण भी सुरक्षित रखा जा सकता है और किसान उत्पादन बढ़ाकर अपना मुनाफा भी बढ़ा सकते हैं। मगर साफ है कि मामला उतना सीधा भी नहीं है जितना समझा जा रहा है। पश्चिमी देशों में भी अनाज सस्ता नहीं रह गया है।

दिल्ली की दहलीज पर प्रदर्शन करने वाले किसान अपने कृषि उत्पादों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) की मांग कर रहे हैं। इन किसानों के सामने भी वही संकट है जिनका सामना पश्चिमी देशों के किसान कर रहे हैं। फर्क केवल इतना है कि भारत में किसानों को फसल उत्पादन के लिए भारी भरकम सब्सिडी नहीं दी जा रही है। इसके बाद दूसरी समस्या है। सरकार को अनाज वितरण के लिए अनाज खरीदना पड़ता है। इसलिए उसे कीमतें नियंत्रण में रखनी पड़ती है। उपभोक्ता (हम सभी लोग) खाद्य महंगाई की मार से बचना चाहते हैं।

किसान ऊंची लागत और बदलते मौसम एवं कीटों के आक्रमण के बीच असहज महसूस कर रहे हैं। उनके लिए इससे भी बड़ी चुनौती यह है कि खाद्य पदार्थों की कीमतें जब भी बढ़ती हैं तो यह किसानों के लिए मुनाफा कमाने का एक अवसर होता है। मगर सरकार आयात के जरिये कीमतें नियंत्रित करने का विकल्प खोज लेती है। इस तरह किसानों को नुकसान उठाना पड़ जाता है। इसके बाद किसान मृदा, जल या जैव-विविधता में सुधार के लिए निवेश करने की स्थिति में नहीं रह जाते हैं।

अब किसानों को यह समझाया जा रहा है कि मुनाफा बढ़ाने के लिए उन्हें उत्पादन बढ़ाने की जरूरत है। मगर कृषि कार्यों के लिए आवश्यक सामग्री महंगी होने से अधिक उत्पादन करने पर खर्च भी बढ़ता जा रहा है। उत्पादन का यह गणित अर्थहीन हो जाता है क्योंकि ऊंची लागत के लिए भारत जैसे देश में कोई मदद नहीं दी जा सकती जहां लोगों को सस्ती दरों पर अनाज मुहैया कराना सरकार के लिए जरूरी है।

यह स्पष्ट है कि भारत सरकार यूरोपीय देशों की तरह तो एक-एक किसान को सब्सिडी नहीं दे सकती है। यह बात भी स्पष्ट है कि येन-केन प्रकारेण उत्पादन बढ़ाने के बीच वित्तीय समर्थन भी पर्याप्त नहीं होगा। इस तरह हमें अब इस बात पर चर्चा करनी होगी कि उत्पादन लागत कैसे कम की जाए और किसानों को उनकी मेहनत का फल मिल जाए। इन परिस्थितियों में पुनर्योजी या प्राकृतिक कृषि बड़ी भूमिका निभाएगी।

मगर इसे बड़े पैमाने पर करना होगा और इसके लिए ठोस नीतियां भी तैयार करनी होंगी। इनके अलावा वृहद कार्य प्रणाली और वैज्ञानिक विधियों की भी जरूरत होगी। स्थानीय स्तर पर काम करने के लिए हमें खाद्य-क्रय नीतियों की भी जरूरत है ताकि किसानों को गुणवत्तापूर्ण फसलों के लिए अच्छी रकम मिल सके। मध्याह्न भोजन के लिए मोटे अनाज खरीदने की ओडिशा सरकार की योजना इसी दिशा में उठाया गया एक कदम है।

सच्चाई यह है कि दुनिया में लोगों का पेट भरने के लिए अनाज की कमी नहीं है मगर समस्या यह है कि इनका काफी हिस्सा मवेशियों को खिलाने में इस्तेमाल होता है या बेकार हो जाता है। हमें इस पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:11-03-24

क्या हमेशा के लिए बदल जायेंगे चुनाव

हरजिंदर

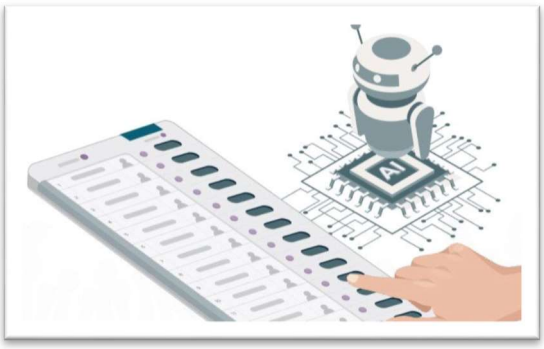

नवंबर महीने की शुरुआत में एक ई-मेल इनबॉक्स में आया। यह मेल एक वेबसाइट का था, जो एआई वॉयस जेनरेटर है, यानी कृत्रिम बुद्धि से तरह-तरह की आवाजें तैयार करने वाली वेबसाइट। इस मेल में दो लिंक थे- एक वेबसाइट का और दूसरे में नाम लिखा था प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का। जब इस दूसरे लिंक को क्लिक किया, तो वहां पंजाबी का एक गाना मिला- तू मेरी हीर लगदी...। 45 सेकंड के इस गाने की खासियत यह थी कि इसे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की हूबहू आवाज में तैयार किया गया था। यह दरअसल एक नमूना था यह बताने के लिए कि वह वेबसाइट क्या कमाल कर सकती है? दूसरे लिंक को क्लिक करने पर जब हम वेबसाइट पर पहंुचे, तो वहां बताया गया कि आप 399 रुपये का सब्सक्रिप्शन लेकर किसी की आवाज में कुछ भी रिकॉर्ड कर सकते हैं। कोई भी बात किसी के मुंह से कहलवा सकते हैं। अगर आपको लगता है कि 399 रुपये का यह सब्सक्रिप्शन ज्यादा है, तो इंटरनेट पर यही काम कराने के मुफ्त विकल्प भी मौजूद हैं।

अभी चंद रोज पहले जब पाकिस्तान के चुनाव में इमरान खान की पाकिस्तान तहरीक-ए-इंसाफ पार्टी सबसे बड़ा दल बनकर उभरी, तो पार्टी ने इमरान खान की आवाज में एक धन्यवाद संदेश जारी किया। इमरान खान जेल में बंद थे और वहां इस तरह की किसी रिकॉर्डिंग की सुविधा उनके पास नहीं थी। साफ है, वह कृत्रिम बुद्धिमत्ता, यानी एआई से तैयार आवाज थी, जो बिल्कुल उसी तरह की थी, जैसी इमरान खान की आवाज है। 2024 को चुनावों का साल कहा जा रहा है। इस साल दुनिया के कई बड़े और महत्वपूर्ण देशों में चुनाव होने हैं। पाकिस्तान का चुनाव इस साल का पहला महत्वपूर्ण चुनाव था और इस चुनाव में ही एआई ने दस्तक दे दी।

ऐसा नहीं है कि एआई का इस्तेमाल इसके पहले के चुनावों में नहीं हुआ है। अगर हम भारत का ही उदाहरण लें, तो दिल्ली विधानसभा के पिछले चुनाव में इसका इस्तेमाल सीमित स्तर पर हुआ था। एमआईटी टेक्नोलॉजी रिव्यू की एक रिपोर्ट के अनुसार, भाजपा के तत्कालीन प्रदेश अध्यक्ष मनोज तिवारी की बीजेपी को वोट देने की अपील के कुछ वीडियो जारी हुए थे। जो मूल वीडियो रिकॉर्ड हुआ, उसमें तो वह हिंदी में दिल्ली के मतदाताओं से वोट देने की अपील करते हैं। एआई की एक वीडियो तकनीक डीपफेक से इसके कई संस्करण तैयार हुए, जिनमें किसी में वह हरियाणवी में वोट देने की अपील कर रहे हैं, तो किसी वीडियो में भोजपुरी में और किसी में पंजाबी में। ये वीडियो इतनी अच्छी तरह तैयार किए गए थे कि किसी में कोई लब-ओ-लहजा गलत नहीं लग रहा था।

एआई का इस तरह का इस्तेमाल आपत्तिजनक नहीं है। समस्या वास्तव में इसके आपत्तिजनक इस्तेमाल को लेकर ही है, जिसके संकेत दिखने लग गए हैं। इसी साल के अंत में अमेरिका में भी राष्ट्रपति चुनाव हैं। पिछले दिनों वहां राष्ट्रपति जो बाइडन का एक वीडियो हर जगह दिखाई देने लगा, जिसमें वह कह रहे थे कि अगर डोनाल्ड ट्रंप चुनाव लड़ते हैं, तो लोगों को वोट ही नहीं डालने चाहिए। जाहिर है, यह फर्जी वीडियो था, जो डीपफेक से तैयार किया गया था। इस नए रुझान को लेकर पूरी दुनिया चिंतित है। खुद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी डीपफेक को लेकर देश और अपनी पार्टी के लोगों को एक से अधिक बार आगाह कर चुके हैं।

ऐसा नहीं है कि झूठ हमारी राजनीति में इससे पहले नहीं था। यह हमेशा से रहा है और सोशल मीडिया के आगमन के बाद पिछले एक दशक में फेक न्यूज के रूप में इसने बहुत उथल-पुथल मचाई है। इसने तनाव पैदा किए हैं, दंगे करवाए हैं और यह मॉब लिंचिंग का कारण भी बनी है। इसने अतीत की महान हस्तियों पर कीचड़ उछाला है, प्रतिष्ठित महिलाओं का चरित्र हनन किया है और तमाम तरह के झूठे इतिहास लोगों के दिमागों में ठूंस दिए हैं। फेक न्यूज के इन तौर-तरीकों ने हमारे चुनावों के नैरेटिव बदल डाले हैं। मगर एआई इससे कहीं आगे की चीज है।

फेक न्यूज के झूठ की देर-सबेर कलई खुल ही जाती थी, लेकिन एआई के झूठ से पार पाना शायद इतना आसान नहीं होगा। एआई झूठ को तैयार करने, परोसने का काम इतनी कुशलता से कर सकती है कि किसी को भी इस पर संदेह न हो सके। एआई की कुशलता इतनी ज्यादा है कि वह एक ही झूठ अलग-अलग तरह के लोगों के सामने अलग-अलग तरीके से पेश कर सकती है। सोशल मीडिया के फेक न्यूज वाले जमाने में हमने देखा है कि किस तरह फोटोशॉप के जरिये तस्वीरों से छेड़छाड़ करके उनको मनमाफिक फसाने में बदला जाता है। हालांकि, फोटोशॉप से इसे अंजाम देने के लिए जो कौशल चाहिए, वह हर किसी के पास नहीं होता। एआई में ऐसे कौशल की जरूरत भी खत्म हो गई है। ऐसी बहुत सी वेबसाइट हैं, जहां आपको सिर्फ यह लिखना है कि आप तस्वीर में क्या चाहते हैं और कुछ ही सेकंडों में आपको तस्वीर तैयार मिल जाती है।

एआई का चुनावी सिरदर्द सिर्फ सफेद झूठ तक सीमित नहीं है। पिछले कुछ चुनावों में हमने देखा है कि किस तरह से बिग डाटा का इस्तेमाल चुनावी रणनीति को तैयार करने और विरोधी को परास्त करने के लिए किया जाता रहा है। इसके आगे बिग डाटा से मतदाताओं की सोच बदलने की कोशिश भी की जाती रही है। एआई इन सारे कामों को ज्यादा कुशलता से अंजाम दे सकती है। साल 2023 में अमेरिकी सीनेट की एक सुनवाई के दौरान ओपेन एआई नाम की कंपनी के सीईओ सैम ऑल्टमैन ने क्लॉगर नामक एक मशीन की अवधारणा दी थी। ऑल्टमैन का कहना था कि चुनाव के दौरान यह सुपर एआई मशीन किसी के भी जीतने की संभावनाओं को अधिकतम कर सकती है।

हमें पता नहीं कि ऐसी कोई मशीन है या नहीं? कोई इसका इस्तेमाल कर रहा है या नहीं? यदि कोई इस्तेमाल कर भी रहा होगा, तो वह इसे गोपनीय ही रखेगा। यह तय है कि एक बार चुनावों में एआई का इस्तेमाल इतने बड़े पैमाने पर शुरू हो गया, तो कुछ समय बाद इसका इस्तेमाल सब दल करने लगेंगे। यानी, एक वक्त ऐसा आएगा, जब मशीनें ही मशीनों के खिलाफ चुनाव लड़ेंगी। क्या हम अपने लोकतंत्र का भविष्य कृत्रिम बुद्धिमत्ता वाली मशीनों के हवाले करने को तैयार हैं?